योग परंपरा और गीता

लेखक
जोशी विभा प्रफुलभाई
(शोध-छात्रा, पीएच.डी.)
टीचर : नरसंग टेकरी -स्कुल : पोरबंदर
जिला : पोरबंदर, पीन : 360579
(गुजरात)

सारांश :— भारत स्वर्णीम इसलिए है, इसके कण-कण में अध्यात्म बसता है। इनका पथ अमृत है। यह भूमि इसलिए गौरवशाली है कि इनकी परम्परा अनूठी अदभूत एवं दिव्य है। भारत में सत्य की परिभाषा है, जो तीनों काल चलती है, टिकती है। भारतने अपनी प्रतिभा को सत्य जानने और सत्यमय हो जाने में समर्पित एवं एकाग्र कर दिया। योग एक ऐसी ही विधा है, जो भारतीय विधा परंपरा में एक सुदृढ़ आधार स्तम्भों में से एक है। योग भारतीय संस्कृति, साधना एवं साहित्य का अविवादास्पद विषय है। इनकी दों महान परंपरा चलती है- एक वैदिक (निगम) परम्परा और दूसरी अवैदिक (आगम) परंपरा। श्रीमद भगवद् गीता का सम्बन्ध वैदिक (निगम) परंपरा से है। इसमें कृष्ण में अर्जुन के माध्यम से योगी बनने का सन्देश दिया गया है।

बीज शब्द : योग, सत्य, वैदिक, गीता

पृथ्वी के आरम्भ से ही भारत एक अध्यात्मिक महान महाराष्ट्र था। भारत एक सनातन यात्रा है, एक अमृत-पथ है। भारत के भाग्य के साथ समग्र मानव जाति का भाग्य जुड़ा है। इस देश में हजारों वर्षों में हजारों लोग चेतन हुए है, सिद्ध हुए है। इसकी चेतना अभी-भी है। यह देश विशेष ऊर्जा-तरंगों से स्पंदित है, इसकी जगह है और कोई देश नहीं कर सकता। भारत एक अदभूत, दिव्य एवं गौरवमय देश है। यह इसलिए है कि इन्होंने सत्य की खोज के लिए सब कुछ न्यौछावर ने अदभूत रूप से अपनी सारी प्रतिभा को सत्य को जानने और सत्य की हो जाने के प्रयास में एकाग्र कर दिया, समर्पित कर दिया।

भारत के इतिहास में आप एक भी बड़ा वैज्ञानिक तुम नहीं देखोंगे। इसका अर्थ यह नहीं है कि हमारे यहाँ बड़े से बड़ा बुद्धिमान और कौशल्यशाली नहीं हुए यह भी यहाँ हुए है लेकिन भारत के रहस्यदर्शी ऋषि ने इनकी आवश्यकता नहीं मानी है। इनकी किमत भी हमने दरिद्रता, रुग्णता आदि यहाँ तक मृत्यु को स्वीकार कर लिया परन्तु सत्य के लिए सबकुछ बलिदान कर दिया है। इससे ही भारत में एक आध्यात्मिक आभा मंडल है, जो अनन्य के पास नहीं है। भारत ने शिव (आदिनाथ) श्री कृष्ण, गोरक्षनाथ, गौतम बुद्ध, महावीर स्वामी, नागार्जुन, श्री शंकराचार्य, रामकृष्ण परमहंस, कबीर, मीरां, नानक, दादू, रैदास आदि पैदा किये। विदेशों ने यह काम नहीं किया है। यह भारत की मोनोपॉली है। भारत ने मनुष्यता के भीतर के दिव्या द्वार खोला है। भारत को बाह्य जगत में रूचि नहीं थी। अंतर के पटल खोलने के लिए भारत ने अनेक विधाओं आविर्भाव किया है- इनमें एक विधा है- 'योगविद्या' और योगविद्या आज के मानवता जाति के लिए अनिवार्य है।

योग पृथ्वी के जन्म के साथ-साथ इनका जन्म हुआ है। योग की शुरुआत मानव संस्कृति के विकास के साथ आध्यात्मिक उत्थान हेतु हुई थी। भारतीय ऋषियों, मुनियों, मनीषओं संता आदिने इस विद्या को विकसित किया। समय, संजोगो के साथ गुरु-शिष्य परम्परा से हम तक पहुँची है।

'योग' शब्द संस्कृत के 'युज' धातु से बना है, जिसका अर्थ है- 'जोड़ना' अथवा किसी कार्य में लगाना। पाणिनिगण पाठ में तीन 'यूज' धातु हैं :

1. दिवादिगणीय 'युज' इनका अर्थ है – 'समाधी'।
2. रुधादिगणीय 'युज' इनका अर्थ है – 'युजिर योगे' अर्थात् संयोग (जोड़ना) है।
3. चुरादिगणीय 'युज' धातु का सम्बन्ध 'वशीकृतस्य मनसः' से है - इनका अर्थ है – मन को वश में करना ही मन का संयमन है।

'योग' का आध्यात्मिक अर्थ है- जीवात्मा और परमात्मा से संयोग कराने की प्रक्रिया। 'योग' शब्द का अर्थ-क्षेत्र अत्यंत व्यापक है। जिस 'योग' का जो विशेष अर्थ एवं उद्देश्य होता है, उनका संकेत करने वाला शब्द आगे जोड़ दिया जाता है। उदा. 'ज्ञान योग' का अर्थ है – ज्ञान साधना द्वारा सर्वव्यापी सत्ता की अखंड अनुभूति। योग का अर्थ आचार्यों ने आत्मदर्शन एवं ब्रह्म-साक्षात्कारपूर्वक स्वरूप व स्थिति एवं मोक्ष की प्राप्ति ही किया है। इस तरह योग शब्द के दो अर्थ है- 1. एक सामान्य, 2. दूसरा तकनीक। यह दोनों अर्थ प्राचीन है।

'योग-विद्या' सृष्टि के प्रारंभ से ही प्रस्थापित थी। सृष्टि के आरंभ से पृथ्वी पर जन्म लेने के साथ ही मानव ने जीवन में दुःख का अनुभव को बचने का प्रयास करते थे। त्रिविध दुःखों के निवारण के लिए मानव ने अनेक उपाय किया इसमें 'योगसाधना' प्रमुख है। विश्व का पचिनतम साहित्य वेद में योग का सर्व प्रथम संकेत मिलता है। ऋग्वेद के 10:121:1 में कहा गया है कि योग हिरण्यगर्भ से प्रथम निर्माण हुआ है-

"हिरण्यगर्भ: समवर्तताग्रे लोकस्य जात: पतिरेक: असीत् ।
स दाधार पृथ्वीं द्यामुतैमां कस्मै देवाय हविषा विधेम ॥"

इस प्रकार हिरण्यगर्भ को सभी विद्याओं एवं कलाओं का आद्य प्रवर्तक माना जाता है।

'योगसूत्र' के अनुसार पृथ्वी को जिसने अपने मस्तक पर धारण किया है, वही शेषनाग ने योग की शुरुआत की है। ऐसी मान्यता है कि महर्षि पतंजलि शेषनाग के अवतार थे। 'योगसूत्र' के भाष्यकार वेदव्यास ने अपने भाष्य में शेषनाग को नमन करते हुए उन्हें योग देनेवाले एवं आविष्कारक कहकर सम्बोधित किया है।

कुछ विद्वान कहते हैं- योग सैन्धव घाटी की देन है क्योंकि सिन्धुघाटी के अवशेषों में मुद्राओं एवं आसनों की आकृतिवाली मूर्तियों मिलती है। इससे स्पष्ट लगता है, उसी दिनों योग का अभ्यास चलता होगा। इस तरह के अवशेषों के अलावा वैदिक क्रिया-कलापों के अवशेष भी मिलते है, इस से पत्ता चलता है कि सिन्धु घाटी सभ्यता वैदिक सभ्यता के बाद की है।

योग का अस्तित्व वेदों की रचना से पूर्व था। इनका कारण यह है कि योग की उच्चत्तम अवस्था में ही ऋषियों-मुनियों को वैदिक ज्ञान प्राप्त हुआ। तपस्वी व्यक्तियों में स्वयंभू ब्रह्म ज्ञान आविर्भूत हुआ है। वेद की अपौरुषेय एवं ऋषियों को मंत्रदृष्टा कहा गया है। वेद को अपौरुषेय एवं ऋषियों को मंत्रदृष्टा कहा गया है। इससे यह सिद्ध होता है कि योग का प्रारंभ वेद से पहले का है।

नाथ परम्परा के सिद्ध योगी आदिनाथ (शिव) को योग का प्रथम वक्ता कहते हैं। इनके अनुसार शिव ने सृष्टि की शुरुआत में मानव के कल्याण के लिए 'योगविद्या' को सर्वप्रथम उपदेश पार्वती को नदी के किनारे पर दिया जाता था। जल में इनको एक मत्स्य सुन रहा था इसी को शंकर ने कृपा करके मत्स्येन्द्रनाथ बनाया। इसने योग का प्रचार-प्रसार किया था। योगी स्वात्माराम ने भगवान् शिव को 'आदिनाथ' शब्द से अलंकृत करते हुए उन्हें योग का प्रथम उपदेशकर्ता माना है। योग सृष्टि के पूर्व भी था। योगी स्वात्माराम जी ने इसी तथ्य को हठयोग प्रदीपिका के प्रारंभ में निम्न प्रकार कहा है-

"श्री आदिनाथ नमोऽस्तुते, येनोपदिष्टा हठयोग विद्या ।
विभ्राजते प्रोन्नत राजयोग, मारोदुमिच्छोरधिरोहिणी व ॥"[1]

इस उल्लेखों से योग अतिप्राचीन विद्या है। इसके अलावा यह विद्या दैवीय उत्पत्ति बात भी आती है। निष्कर्ष के रूप में हम कह सकते है कि इतिहास की पहुँच जहाँ तक है, उस से भी आगे 'योगविद्या' पृथ्वी पर विद्यमान थी। यह विद्या भारतीय भूमि की एक अनूठी अमूल्य दिव्य धरोहर है, जो अनादिकाल से चली आ रही है।

ब्रह्मयोग (राजयोग) एवं कर्मयोग इस तरह दो शाखाओं के रूप में 'योग' उद्भव हुआ। इसी परम्पराओं का वर्णन गरुड़ पुराण एवं गीता में मिलता है। ब्रह्मयोग (ज्ञानयोग) के अनुयायीं – सनक सनातन, सनन्दन, कपिल आसुरी, पंचशिख, पदभृति आदि विद्वान् हैं। यह योग को सांख्ययोग, ज्ञानयोग, एवं अध्यात्म योग से प्रचलित हुआ।

दूसरी शाखा कर्मयोग की परंपरा में विवश्मान, मनु, इक्ष्वाकु आदि राजर्षि हुए। इसी परम्परा का उल्लेख छान्दोग्य उपनिषद में है। इसी परंपरा के बारे में श्री कृष्ण ने गीता में वर्णन किया है। योग की इस दो परम्पराओं के अतिरिक्त दो परम्पराएँ प्रचलित है, जैसे-

1. वैदिक योग परम्परा या निगम परम्परा
2. नाथ पंथ की हठयोग परम्परा या आगम (अवैदिका) परम्परा।

वैदिक परम्परा में विवश्मान, मनु, इक्ष्वाकु, श्री कृष्ण, महर्षि पतंजलि हुए हैं। महर्षि पतंजलि ने योग विद्या की विविध धाराओं को एकत्रित कर सही रूप दिया और एक महान ग्रन्थ की रचना की है, वह है – 'योगसूत्र' इसको 'योग-दर्शन' के रूप में स्वीकार किया गया है। इसकी परम्परा में योगसूत्र की व्याख्या करने वाले अनेक विद्वान है जैसे, व्यास का भाष्य वाचस्पति मिश्र की तत्त्ववैशारदी, विज्ञानभिक्षु का योग वर्तिका, योगसार संग्रह, शंकर का भाष्य विवरण मास्वती टीका, भोजराज का राजमार्तंड, शिवेन्द्र का योग सुधाकर आदि है।

दूसरी परम्परा नाथ-परंपरा है, इस परम्परा में आदिनाथ शिव (महदेव शंकर) को योग प्रथम प्रारंभकर्ता, प्रवक्ता माना गया है। पार्वती को योग का उपदेश शिव को दे रहे थे, उसे मत्स्येन्द्रनाथ ने सुन लिया। शिव कृपा से उनके आदेशानुसार मत्स्येन्द्रनाथ ही योग-विद्या के प्रचारक हुए। इनके के महान शिष्य गुरु गोरक्षनाथ ने इनको संगठित कर सुन्दरतम् रूप देकर योग का प्रचार-प्रसार किया इस परम्परा में इसको आदिनाथ शिव का अवतार माना जाता है। गोरक्षनाथ ने योगविद्या की इतनी उचाइयां दी की न इनसे कितने सिद्ध पैदा हुए और होंगे आज नाथ-सम्प्रदाय गोरक्षनाथ का पर्याय शब्द बन गया है। नाथ सुनते ही हमारे अन्दर गोरक्षनाथ आते है। इस परम्परा में नवनाथ हुए एक लम्बी परम्परा आज नाथों में है। इसी परम्परा में घेरण्ड संहिता आदि।

डॉ. भारतीसिंह कहते हैं- भारतीय दर्शन एवं अध्यात्म-साधना की प्रायः सभी वैदिक या अवैदिक, निगम या आगम परम्परा में योग-दर्शन एवं साधना का कोई न कोई रूप अनादिकाल से प्रचलित रहा है। पतंजलि ने जिस योग-दर्शन एवं साधना का स्वरूप निरूपण किया है , वह निश्चय ही अतीत की अज्ञात कालकला से लोक-वेद प्रचलित परम्परा से चला आ रहा योग विद्या-दर्शन एवं साधना का एक सुव्यवस्थित सूत्र-बद्ध-विन्यास है।.... नाथयोग दर्शन एवं साधना जिसके आदि प्रवर्तक आदिनाथ शिव है और जिसके विकास एवं संवर्धन में सर्वश्री मत्स्येन्द्रनाथ, गोरक्षनाथ, जालन्धरनाथ आदि नवनाथों सहित अनेक नाथपंथी साधकों का उल्लेखनीय योगदान रहा है। अपने तत्त्वदर्शन एवं साधना के लिए पूर्ववर्ती सभी वैदिक-अवैदिक, निगमागम परम्पराओं में विकसित योगिक एवं तांत्रिक विचारधारा और साधनाओं
का समन्वित और संशोधित रूप है।

कुछ विद्वानों का मानना है कि योग सैन्धव सभ्यता से ही है, प्रमाण के रूप में कहते है- मोहनजोदड़ों में जो धार्मिक अवशेष मिले है, इसमें एक नरदेवता की मूर्ति है। जो शिव का आदि रूप है। सर 'जान मार्शल' ने अपनी पुस्तक 'मोहनजोदड़ो एण्ड द इण्डस सिविलाइज़ेशन' में स्पष्ट लिखा है कि मोहनजोदड़ो में जिस नरदेवता की मूर्ति मिली है, वह मूर्ति त्रिमुखी है, एक ऊँचे पीठासन पर 'योगमुद्रा' में बैठे हैं। इससे यह तथ्य निकलता है कि उस समय योग-विद्या थी। इस आधार पर कुछ विद्वानों सैन्धव सभ्यता वैद को पूर्व की माना है और कहते है योग-विद्या सैन्धव सभ्यता से प्रारंभ हुई है। आधुनिक शोध ने सिन्धु सभ्यता के बाद की मानी है। वह वैदिक सभ्यता का अंग है।

गीता :

'गीता' भारतीय आध्यात्मिक जगत के एक अनूठा अदभूत महत्त्वपूर्ण एवं प्रचलित ग्रन्थ है। भारतीय धर्माकाश में ज्यादा चमकता हुआ ग्रन्थ है। इस ग्रन्थ का संसार की अधिक से अधिक भाषा में इनका अनुवाद हुआ है। गीता में लगभग सारी महत्त्वपूर्ण विधाएँ विद्यमान है। मानव जीवन के महत्त्वपूर्ण पहलुओं का इसमें वर्णन है। सभी विधाओं में गीता ने योग को विशेष महत्त्व दिया है। सभी विद्याओं में गीता ने योग को विशेष महत्त्व दिया है। गीता में जगह-जगह योग और योगी शब्द मिलते है। योग क्या है, योग कहाँ करना चाहिए। किस प्रकार करना है कैसे इसके फल की प्राप्ति करनी है। इस सभी बातों को गीता ने बताया है।

गीता (2150) में श्री कृष्ण ने अपने सखा अर्जुन से आध्यात्मिक चर्चा के समय योग के बारे बताया है- समबुद्धियुक्त पुरुष पुण्य और पाप दोनों को इसी लोक में त्याग देता है, तू समत्वरूप योग में लग जा, यह समत्वरूप योग ही कर्मबंधन से छूटने का उपाय है –

"बुद्धि युक्तो जहातीह उभे सुकृतदुष्कृते ॥५०॥
तस्माधोगाय युज्यस्व योगः कर्मसु, कौशलम् ॥"

गीता कर्मों में विशेषज्ञता को, कौशल का योग कहते है। तू आसक्ति को त्यागकर एवं सिद्ध और सिद्धि में समान बुद्धिमाला होकर योग में स्थित हुआ कर्तव्यकर्मों को कर, समत्व ही योग कहलाता है, 2/४८ में –

"योगस्थः कुरु कर्माणि सङ्गं त्यक्त्वा धनञ्जय ।
सिद्धसिद्धोः समो भूत्वा समत्वं योग उच्चते ॥४८॥"

अर्थात् 'योग' में स्थित हुआ कर्म फल को त्यागकर और सिद्धि असिद्धि में सम होकर तू कर्म कर यह समता ही योग है। गीता में अध्याय 6/23 में कहा है – वह विद्या जिससे दुखों से पूर्णतया छूटकारा मिल जाय, उसे ही प्राप्त करना योग कहा है-

"तं विद्याद् दुःख संयोगवियोगं योगसिञ्जतम् ।
स निश्चयेन योक्तव्यो योगोऽनिर्विणचेतसा ॥२३॥

गीता में 'योग' शब्द के अर्थ है, पाणिनिगण के तीन 'युज' धातु के अनुरूप विभाग का, देखें-

1. 'युजिर योगे' अर्थ है- समरूप परमात्मा के साथ नित्य सम्बन्ध जैसे- 'समत्वं योग उच्चते' – गीता में – 2/48 में है।
2. 'यूज समाधौ' अर्थ है- चित्त की स्थिरता अर्थात् समाधि। गीता में 6/20 में यत्रोपरमते चितं निरुद्धं योग सेवया
3. 'युज् संयमने' धातु से बना 'योग' का अर्थ है- सामर्थ्य प्रभाव गीता में – 9/5 'पश्य में योगमैश्वराम् ।

पतंजलि योग-दर्शन समाधिवाद-सूत्र-2 में कहा है-

योगश्चित्तवृत्ति निरोधः ॥२॥ अर्थात् चित्त की वृत्तियों का निरोध ही योग है।

गीता के चतुर्थ अध्याय के प्रारंभ में श्री कृष्ण ने अर्जुन से कहा है कि मैंने इस अविनाशी योग को सूर्य से कहा था, सूर्य ने अपने पुत्र वैवस्वत मनुसे कहा और मनु ने अपने पुत्र राजा इक्ष्वाकु से कहा। अर्जुन इस प्रकार परम्परा से प्राप्त इस योग को राजर्षियों ने जाना, किन्तु उसके बाद यह योग बहुत काल से इस पृथ्वीलोक में लुप्तप्राय हो गया। तू मेरा भक्त और प्रिय सखा है, इसलिए वही यह पुरातन योग आज मैंने तुझको कहा है, यह बड़ा ही उत्तम रहस्य है अर्थात गुप्त रखने योग्य है –

"इमं विवस्वते योगं प्रोक्तवानहम व्ययम् ।
विवस्वान्मनवे प्राह मनुरिक्ष्वाकवेऽब्रवीत् ॥१॥
एवं परम्पराप्रात्यमीमं राजर्षयो विदुः ।
स कालेनेह महता योगो नष्ट परन्तय ॥२॥
स एवयं मया तेऽध योगः प्रोक्तः पुरातनः ।
भक्तोऽसि मे सखा चेति रहस्यं ह्येतदत्तमम् ॥३॥"[3]

इसका अर्थ यह है कि भगवान् योग को सृष्टि के प्रारंभ से ही किया था।

गीता के अध्याय-3 और श्लोक-31 में भगवान् ने दो निष्ठाएँ बतायी हैं- कर्मयोग और सांख्ययोग और योगियों की निष्ठा कर्मयोग से होती है। निष्काम भाव से किये कर्म मुक्ति दायक कर्म होते है। यही कर्मयोग के अंतर्गत आते हैं। सत् के साथ योग होना संख्यायोग है।

गीता में भगवान् ने कर्मयोग, ज्ञान योग और भक्तियोग- तीनों ही योगों से सर्वथा कर्मो (पापों) का नाश होने को कहा है –

1. कर्मयोग : अध्याय-3, श्लोक 13 में कृष्ण कहते है- जो साधक मात्र कर्तव्य-कर्म की परम्परा सुरक्षित रखने के लिए लोक हित के लिए, सृष्टि चक्र की परम्परा चलाने के लिए ही कर्तव्य-कर्म का पालन करता है, अपने लिए नहीं, वह सम्पूर्ण पापों से मुक्त हो जाता है।
2. ज्ञानयोग : अध्याय-4, श्लोक-37 में कृष्ण कहता है, है अर्जुन ! जैसे प्रज्ज्वलित अग्न इंधनों को भस्ममय कर देता है, वैसे ही ज्ञानरूप अग्नि सम्पूर्ण कर्मों को भास्ममय कर देता है।
3. भक्तियोग : अध्याय-6, श्लोक-14, 15 में कृष्ण कहते है- शांत अंतःकरण वाला, भयरहित और ब्रह्मचारी व्रत में स्थित साधक मन को रोककर चित्त को मुझमें लगाकर मेरे परायण हो जाय तो उसको मेरे में रहनेवाली परमानंद की पराकाष्ठारूप शांति को प्राप्त होता है।

गीता में योग के विविध अंगों वर्णन भी है। योग के स्थान, योग की विधि, आदि का वर्णन है। योग साधना के लिए उपर्युक्त स्थान का वर्णन अध्याय-6, श्लोक-11, 12, 13 में इस प्रकार वर्णन किया है- शुद्ध भूमि में, जिसके ऊपर कुशा, मृगशाला और वस्त्र बिछे हैं, जो न बहुत ऊँचा है और न बहुत नीचा ऐसे अपने आसन को स्थिर स्थापन कर के। उस आसन पर बैठकर चित्त और इन्द्रियों की क्रियाओं की वश में रखते हुए मन को एकाग्र करके अन्तःकरण की शुद्धि के लिए योग का अभ्यास करें। ध्यान करते समय शरीर सिर और गले की समान एवं अचल धारण करके और स्थिर होकर चारों दिशाओं को न देखता हुआ योग का अभ्यास करे।

योग साधना के लिए मन और इन्द्रियों सहित शरीर को वश में रखनेवाला, आशारहित और संग्रह रहित योगी अकेला ही एकांत स्थान में स्थित होकर आत्मा को निरंतर परमात्मा में लगावे । हे अर्जुन ! यह योग खानेवाले को न अधिक खानेवाले को, न बहुत शयन करने वाले को, न सदा जागनेवालो को सिद्ध होता है। दुःखों का नाश करनेवाला योग तो समयक आहार-विहार करनेवाले को, कर्मो में यथायोग्य चेष्टा करनेवालो को, यथायोग्य सोने एवं जागने वाले का ही सिद्ध होता है।

श्री कृष्ण कहते है- योगी तपस्वियों से श्रेष्ठ है, शास्त्र सानियों से भी श्रेष्ठ है और सकाम कर्म करनेवालों से भी योगिश्रेष्ठ है। अतः हे अर्जुन! तू योगी बन –

" तपस्विभ्योऽधिको योगी ज्ञानीभ्योऽपि मतोऽधिकः ।
कर्मिभ्यश्चाधिको योगी तस्माद्योगी भवार्जुन ॥४६॥"

डॉ. रामचंद्र त्रिपाठी कहते है- "हे अर्जुन ! तू योगी बन जा क्योंकि योग से ही तेरा अभीष्ट सिद्ध होगा । योगी शरीरधारी होते हुए भी अशरीरी होता है क्योंकि योगी अपने योग की अवस्था में क्रमशः पाँचों तत्त्वों को पाँचों तत्त्वों में विलीन करता हुआ समाधि कि अवस्था में अमृत तत्त्व का पान करता हुआ समाधि की अवस्था में अमृत तत्त्व का पान करता हुआ आनन्दलोक में वास करता है।[4]

आचार्य रजनीश गीता-दर्शन में कहते है- "अर्जुन, तू योगी भी बन और युद्ध में भी खडा रहा। तू हो जा बुद्ध जैसा, फिर भी तेरे हाथ से धनुष-बाण न छूटे।[5]

----------00--------

संदर्भ सूची

1. नाथ संप्रदाय में योग का स्वरूप : डॉ. धारू नरेशकुमार एवं डॉ. गणेशशंकर, सत्यम् पब्लिशिंग हाऊस-नई दिल्ली, संस्करण-२०१९, पृष्ठ-१५
2. पतंजलियोग-नाथयोग परम्परा, दर्शन, साधना एवं वैशिष्ट्य : डॉ. भारतीसिंह, सत्यम् पब्लिशिंग हाउस-नई दिल्ली, संस्करण : २०१३, पृष्ठ-७० और ९० पर
3. श्रीमद् भगवद् : गीता प्रेस-गोरखपुर, सं. २०७३ छियासवाँ पुनर्मुद्रण, चतुर्थ अध्याय, श्लोक-१, २, ३, पृष्ठ-६१
4. योगवाणी-पत्रिका; सम्पादक-महंत योगी, आदित्यनाथ, प्रकाशक : श्री गोरखनाथ मंदिर, लेखक : डॉ. त्रिपाठी रामचंद्र राम, पृष्ठ-१६
5. गीता-दर्शन : (ओशो द्वारा श्रीमद् भगवद् गीता पर प्रवचनों का संकलन : १-८ भाग) भाग-3, प्रकाशन : रेबल पब्लिशिंग हाउस प्रा. लि., पूना, विशेष राज संस्करण : १९९२

----------00--------